International Journal of Scientific Research in Science and Technology
Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X (www.ijsrst.com)

मिथिला का समाज और धर्म

डॉ. विजय कुमार मिश्रा
S/o- बैद्यनाथ मिश्र
ग्राम–लदारी, पो0–समैला लालगंज
भाया–केवटी, जिला–दरभंगा, बिहार

Article Info
Volume 7, Issue 5
Page Number: 257-264
Publication Issue :
September-October-2020

Article History
Accepted : 01 Oct 2020
Published : 10 Oct 2020

सार–संक्षेप

मिथिला आर्यों के सांस्कृतिक उपनिवे ावाद एवं तज्जनित आरोहण से उद्भूत भारत का वह भू–क्षेत्र है, जहाँ संस्कृति का बहुआयामी स्वरूप ऐसा देदीप्यमान हुआ, जिसने अन्य प्रदे ाों में अपनी श्रेष्ठता साबित कर दी। ऐसे अप्रतिम सांस्कृतिक उत्कर्ष की सहभागी थी पूर्व से यहाँ निवास करने वाली जनजातियों के समृद्ध सामाजिक–धार्मिक आस्था एवं आर्यों की संस्कृति के साथ सं लेषणात्मक अभिक्रिया। ऐसी साँझी संस्कृति मानवीय गुणों के विकास के साथ–साथ उनके कलात्मक विकास को उत्कर्ष एवं व्यापक बनाने की सफल चेष्टा है। मिथिला की सांस्कृतिक संरचना, यहाँ की लोक–संस्कृति के अवदानों का विकसित रूप है। निःसंदेह मिथिला का धार्मिक परिदृश्य पौराणिक–धार्मिक संकल्पनाओं से अनुप्राणित है, जिसमें पुराणों के आदर्शों को कलात्मक परिधि में, कभी सांकेतिक रूप में, कभी प्राकृतिक वस्तुओं द्वारा, कभी मृत्तिका–निर्मित आकृतियों द्वारा तथा कभी मात्र सांकेतिक चित्रों द्वारा अभिव्यक्त करने की परिपाटी है।

भाब्द कुंजी : सामाजिक–धार्मिक व्यवस्था, सांस्कृतिक संरचना, लोक संस्कृति

प्रस्तावना

ऋग्वैदिक काल में समाज चार वर्णों में विभक्त था। उनमें प्रथम तीन को 'द्विज' की संज्ञा प्राप्त थी, क्योंकि उनका यज्ञोपवीत अथवा उपनयन संस्कार होता था। वेदनिर्दिष्ट आध्यात्मिक अनुशासन के साथ जीवन व्यतीत करने की प्रतिज्ञा के साथ उस संस्कार से संस्कृत व्यक्ति यज्ञ–पूत सूत्र धारण करता था, जो उसके

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

भावी पवित्र जीवन–क्रम का परिचायक होता था। आर्यों के उपर्युक्त चार वर्गों में से चतुर्थ को 'शूद्र' कहा जाता था। उनका कार्य अपने से ऊपर के तीनों वर्गों की सेवा करना माना गया था। शूद्र वर्ण यज्ञोपवीत संस्कार का अधिकारी नहीं था। द्विजजातियों के तीनों वर्गो के नाम श्रेष्ठता एवं प्रधानता के अनुसार क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य थे। उद्‌र्ध्वाड़ि.कत चारों वर्गों के वृत्त से बाहर की जातियों एवं उपजातियों को 'अन्त्यज' कहा जाता था। अति प्राचीन काल में शुभ कर्मों के सम्पादन के द्वारा मनुष्य का वर्ण–परिवर्त्तन संभव था। निम्न वर्ण के व्यक्ति का ऊपर के वर्गों में उत्क्रमण चारित्र्यबल एवं आदर्श कर्त्तव्य–कार्य द्वारा सर्वथा शक्त था। ऐसे वर्ण–परिवर्त्तन के वेदों एवं पुराणों में अनेक प्रमाण प्राप्त है। किन्तु आधुनिक युग में प्रत्येक वर्ण अपनी परिधि के भीतर की सभी जातियों और उपजातियों की समष्टि का द्योतक बन गया है। वर्ण और जाति समाज के विभागों तथा उप–विभागों के भिन्न दो रूप हैं। दोनों को एक मान लेना भ्रम है।

साधारणतया जिन मनुष्यों का उद्‌गम, सामाजिक संस्कार, कर्त्तव्य–कार्य, जीविकोपार्जन–साधन, आचार–विचार आदि एक–सा हो, तथा जिनका अपनी परिविष्टि के अन्दर शादी–विवाह का सम्बन्ध और खान–पान बिना सामाजिक रोक–टोक के होता हो, ऐसे लोगों के समष्टि–समुदाय को 'जाति' कहा जाता है। पर जाति की उपर्युक्त व्याख्या सर्वत्र एक–सी लागू नहीं है। सभी राजपूतों का उद्‌भव एक नहीं है। अनेक ऊँची जातियों के सदस्य एक दूसरे के साथ बैठकर भोजन नहीं करते हैं। इस प्रकार की अनेक भिन्नता एक जाति के वृत्त के अन्दर भी दृष्टिगोचर होती है।

प्रत्येक जाति के अन्दर अनेक उपजातियों का अस्तित्व पाया जाता है। इस प्रकार की उपजातियों के निर्माण के कारण अनेक हैं, जिन सबों का उल्लेख करना यहाँ संभव नहीं है। मोटा–मोटी तौर पर स्थान का परिवर्त्तन, निम्न अथवा उच्च स्तर का जीविकोपार्जन–साधन–कार्य को अपनाना, सामाजिक व्यवस्था में आर्थिक तारतम्य, अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाह आदि ने एक जाति के बीच दरार उत्पन्न कर उसको कई टुकड़ों में विभक्त कर दिया है तथा उसके अन्दर हुई उपजातियों की सृष्टि कर दी है।

मिथिला के निवासी कट्‌टर जातिपंथी समझे जाते रहे हैं। साधारणतया यहाँ के हिन्दू मुसलमान, क्रिस्तान, यहूदी आदि विधर्मी तथा विलायत के वासियों के साथ बैठकर और उनका छूआ भोजन करने में अपने को धर्मच्युत होना मानते रहे हैं। परन्तु अपने बच्चों को उन सबों के द्वारा संचालित विद्यालयों में भेज कर उनकी देख–रेख में विद्योपार्जन करवाना वे अनुचित एवं अधर्म नहीं समझते। उच्च वर्ण के लोग निम्नवर्ण के सदस्य द्वारा प्रस्तुत कच्ची रसोई नहीं खाते हैं। किन्तु कानू, बनिया, धानुक, कुर्मी आदि के घर का भुना हुआ चना–चावल खाने में उनको धार्मिक विरोध नहीं है। शूद्रों के द्वारा घी में पकायी वस्तु को ग्रहण करना भी वे अधर्म नहीं समझते हैं। घी अथवा तेल लगायी हुई रोटियाँ आदि शूद्रों के हाथ से परोसी जाती है तो वह भोजन उच्चवर्ण के सदस्य, विशेषतया ब्राह्मण वर्ग को ग्राह्य नहीं होता है। रेशम, ऊन तथा जूटों की छाल के रेशे से प्रस्तुत कपड़े के अतिरिक्त कपास के सूत से बने वस्त्र यदि निम्नजाति के लोग से छू जाते हैं तो

ब्राह्मण उन्हें अपवित्र मानते हैं। जानवरों की खाल को वे अपवित्र मानते हैं, किन्तु व्याघ्र एवं मृग के चमड़े का व्यवहार वे पूजा–पाठ तथा धार्मिक संस्कारों के अवसर पर भी करते हैं। चोरी, जाल–फरेब जैसे घृणित कार्य करने पर हिन्दुओं की जाति नहीं जाती है, किन्तु किसी समय व्यापार अथवा विद्योपार्जन के हेतु भी समुद्र–यात्रा करने पर वे जातिच्युत हो जाते थे। किसी जाति–विशेष के व्यक्ति का छुआ जल एक स्थान में उच्च जाति के लोग ग्रहण करते हैं और उसी का दूसरी जगह के उच्च जाति के सदस्य व्यवहार में नहीं लाते हैं। मिथिला के ब्राह्मण मछली खाना बुरा नहीं मानते हैं। देव–बलि के मांस का भी भक्षण वे करते हैं, परन्तु केवल बकरे का मांस। गो–मांस का भक्षण मिथिला के हिन्दू पाप समझते हैं। जमीन के नीचे उपजने वाली वस्तुओं में प्याज एवं लहसुन का खाना ब्राह्मणों के लिए निषेध माना जाता है। वे अण्डा भी नहीं खाते हैं। पर ये सब बन्धन शनैः–शनैः ढीले पड़ते जा रहे हैं। भोजन बनाने के लिए पाचक अपने अथवा अपने से ऊँचे वर्ण के लोगों में से नियुक्त करने की परिपाटी है। ब्राह्मणों के लिए धूम्र–पान भी निषेध है परन्तु आज–कल लोग धूम्रपान करने लगे है और जातियों में हुक्का–पानी के व्यवहार में विचार है कि किस उप–जाति का हुक्का–पानी पीना चाहिए और किसका नहीं। विवाह–सम्बन्ध अपनी उपजाति में करने का नियम है। सीमोल्लंघन अपराध माना जाता है। शूद्रों का निवास ब्राह्मणों के आवास में वर्जित है। जाति के बन्धन के विरूद्ध आचरण करने पर अपराधी को जाति–च्युत कर उसकी परिधि से उसको बहिष्कृत करने का दण्ड समाज देता है। उसके साथ हुक्का–पानी, शादी–विवाह, खान–पान तथा बोल–चाल का व्यवहार बन्द कर दिया जाता है। प्रत्येक ऐसी जाति में मानजन (मान्यजन) का अवैतनिक पद होता है, जिस पर प्रतिष्ठित व्यक्ति प्रतिष्ठित किया जाता है जो समाज के गण्य–मान्य लोगों की सहमति से अभियुक्त को दोषी घोषित कर दण्ड की आज्ञा सुनाता है, तथा उसकी कार्यान्विति भी समाज के सहयोग से करवाता है। कहीं–कहीं मानजन के साथ सरदार और छड़ीदार का पद भी होता है। सरदार के पद को यदि अध्यक्ष का पद माना जाय तो मानजन को उपाध्यक्ष मानना पड़ेगा, और छड़ीदार को सन्देशवाहक एवं कार्यपालक। प्रायश्चित एवं पश्चात्ताप के पश्चात चाल में सुधार आने पर अपराधी दण्ड–मुक्त किया जाता है तथा उसका पुनः प्रवेश जाति में होता है। परन्तु जाति बहिष्कृत कर दण्ड देने की उपर्युक्त प्रथा निम्न वर्ग के लोगों में ही प्रचलित है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, कायस्थ आदि उच्च–वर्गीय समाज में ऐसी बात नहीं है। उनमें सरदार, मानजन, अथवा छड़ीदार के पदों वाला कोई संगठन नहीं है जो उपर्युक्त प्रकार के जाति–बन्धन की सीमा के अतिक्रमण करने वालों के अपराध का पता लगाकर अपराधी को सामाजिक अथवा शास्त्र–विहित दण्ड दे। अपराध–कर्मी के अपराध की शंका होने पर पड़ोसी उसके विरूद्ध उचित कार्यवाही करने के हेतु सजग एव ंसचेष्ट हो जाते हैं। यदि अपराध गुरूतर होता है और वह स्पष्टतया समाज के सम्मुख प्रकट रहता है तो लोग उसके साथ असहयोग कर उसका सामाजिक बहिष्कार करते हैं। यदि उसका अपराध स्पष्ट रूप से सिद्ध नहीं होता है और उसमें शंका का स्थान बना रहता है तो वैसी अवस्था में अपराध की जाँच करने तथा प्रमाणित हो जाने पर उसके प्रतिकार में क्या करना

चाहिए इसका निर्णय देने के लिए जाति के प्रतिष्ठित व्यक्तियों की गोष्ठी बुलायी जाती है। अपने को निर्दोष प्रमाणित करने का दायित्व अभियुक्त के ऊपर होता है। गोष्ठी के निर्णयानुसार यदि अभियुक्त दोषी घोषित किया जाता है, तो धर्मशास्त्र के ज्ञाता पण्डितों से राय लेकर उसकी शुद्धि के हेतु दण्ड की व्यवस्था शास्त्र–विधानानुसार की जाती है। इस प्रकार के दण्ड–विधान को प्रायश्चित्त कहा जाता है। पंडितों द्वारा निर्णीत प्रायश्चित को पूरा करने के पश्चात् दोषी दोष–मुक्त माना जाता है, और तब उस पर से सामाजिक प्रतिबन्ध भी हटा लिया जाता है। दोष के गुरूत्व एवं लघुत्व के अनुपात में ही दण्ड का विधान शास्त्रज्ञ पण्डितों द्वारा किया जाता है। एक निर्धारित काल तक उपवास, भिक्षाटन द्वारा जीवन–निर्वाह, मौनावलम्बन, दिन मे केवल एक बार भोजन, तीर्थाटन, गंगा–स्नान एवं वहाँ की पावन बालुका के साथ गंगोदकपान, तथा पंचगव्य–गिलन आदि प्रायश्चित्ती की शुद्धि के हेतु प्रायश्चित कर्म बताये जाते हैं। गोदान, बछियादान, ब्राह्मण भोजन, जाति भोज तथा सत्यनारायण भगवान् की पूजा एवं कथा के अनुष्ठान करने का आदेश भी शुद्धि के हेतु प्रायश्चित्ती को दिया जाता है।[1]

निम्नवर्गीय जाति के लोगों की 'चटाई' होती है। चटाई का अर्थ होता है कुश, तृण आदि से प्रस्तुत शय्या अथवा बिछावन। किसी जाति विशेष की एक चटाई से उसके भौगोलिक विभाजन का पता चलता है। जितने ग्रामों की वह चटाई होती है, उतने ग्रामों के उस जाति के लोगों का विशेष अवसर पर एकत्रित होना तथा खान–पान एक साथ होता है। प्रत्येक चटाई के लिए एक पंचायत–समिति होती है, जिसमें पूर्व प्रचलित परिपाटी के अनुसार एक, दो, अथवा तीन कार्यपालक मुखिया होते हैं। ऐसी चटाई के मुखिया जातीय नियमों के सीमोल्लंघन के अतिरिक्त व्यभिचार, बलात्कार, स्त्री अथवा कन्या–अपहरण, एवं उढ़ारण आदि गुरूतर अपराधों का भी निर्णय अपनी पंचायत द्वारा करते हैं। इस प्रकार के अपराधों के लिए दण्ड का विधान होता है जुर्माना, अस्थायी अथवा स्थायी जाति–बहिष्कार, जाति वालों को भोज देना, तथा शारीरिक दण्ड भी। उच्च जातियों के लिए शास्त्रानुसार प्रायश्चित की व्यवस्था की जाती है। नीची जाति की स्त्री से विवाह करना और उसका परित्याग नहीं करना, तथा निम्नजाति के सदस्यों द्वारा प्रस्तुत भोजन ग्रहण करना गुरूतर अपराध समझा जाता है। इसी तरह व्यभिचार और निषिद्ध तथा दूषित कार्य का करना भी बहुत बुरा माना जाता है। ऐसे अपराधों के लिए स्थायी रूप से जातीय बहिष्कार का दण्ड दिया जाता है। लघु अपराधों के लिए आर्थिक और शारीरिक दण्ड तथा जातिवालों को भोज खिलाने की व्यवस्था की जाती है।[2]

ब्राह्मणों का स्थान सभी जातियों में उच्च माना जाता है। श्रेष्ठता का मूल कारण उस वर्ग की आध्यात्मिकता, विद्वत्ता तथा समाज के अन्य वर्ग का गुरू बनकर उन सबों के धार्मिक कृत्यों का पुरोहित के रूप में सम्पादन करना रहा है। यह कार्य आज भी बहुत अंशो में ब्राह्मण समाज द्वारा ही किया जाता है, यद्यपि अनेक जातियों के पुरोहित उनके अपने जाति–वृत्त में से अलग है। मिथिला के निवासी सभी ब्राह्मण पुरोहिती कार्य नहीं करते हैं। उनमें बहुत बड़े–बड़े जमींदार हैं। उस समाज के समृद्ध समुदाय पुरोहिती वृत्ति

को मन्द मानते आये हैं। अतः उसे उन सबों ने त्याज्य समझ रखा है, यद्यपि ब्राह्मणों के षट्कर्मो में विद्या पढ़ना, विद्या पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना तथा दान लेना भी समाविष्ट है। पुरोहिती प्रायः वैसे ब्राह्मणों की वृत्ति होती है जिनकी आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक नहीं है। ऐसे ब्राह्मण अपने यजमानों से यज्ञ, धार्मिक संस्कार, पूजा, पाठ, पर्व, त्योहार आदि के समय में प्राप्त दान से अपना जीवन निर्वाह करते हैं। देवालयों को समर्पित भूमि, पुष्करिणी, वाटिका, अट्टालिका आदि की आय से भी ऐसे ब्राह्मणों का निर्वाह होता है। उसके पलटे में वे देवालय के देवों की पूजा–अर्चा दाता के प्रतिनिधि के रूप में करते हैं। इस कोटि के ब्राह्मणों में से अनेक अपनी सामुद्रिक विद्या के बल से हथेली की रेखाओं तथा शरीर पर के तिलों आदि को देख कर मनुष्य के जीवन की घटनाएँ तथा शुभाशुभ फल बतलाते है, और उसके द्वारा धन प्राप्त कर अपनी जीविका चलाते हैं। कुछ लोग अपने घर पर शुल्क देकर और कुछ निःशुल्क संस्कृत की शिक्षा विद्यार्थियों को देते हैं। किन्तु संस्कृत की शिक्षा विशेषतया निःशुल्क दी जाती है। यह मिथिला की प्राचीन प्रचलित प्रथा एवं पद्धति है। मिथिला में पश्चिमा अथवा भूमिहार ब्राह्मणों की संख्या भी पर्याप्त है। गिनती के हिसाब से ब्राह्मण वर्ग में मैथिलों के बाद इस जाति का स्थान द्वितीय है।[3]

मिथिला मे राजपूतो का भी निवास है। पर उनकी संख्या ब्राह्मणों, ग्वालों एवं दुसाधों से अपेक्षाकृत कम है। राजपूत क्षत्रियों के वंशधर माने जाते हैं। पर इस बात को किसी–किसी स्थान में स्वीकार नहीं किया जाता है। पूर्णिया एवं भागलपुर जिले के कुछ भाग के राजपूतों को वहाँ की जनता कायस्थों, वैद्यों तथा वाणिज्य–व्यवसाय करने वाली जातियों की अपेक्षा कम प्रतिष्ठा का पात्र समझती हैं।[4]

वैश्य का स्थान ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के बाद आता है। अनेक उपजातियाँ वैश्यों की है। उनमें अग्रवालों का स्थान सर्वाग्र समझा जाता है। यह वर्ग अति समृद्ध है तथा सोना, चाँदी, नाना रत्न, अन्न, वस्त्र आदि का वाणिज्य और महाजनी लेन–देन करता है। इस जाति में अनेक प्रतिष्ठित भू–स्वामी हैं। कुछ इनमें से अन्य व्यवसाय भी करते हैं। अग्रवालों के अतिरिक्त महेश्वरी, वर्णवाल, पुरवर, रौणियार, रस्तोगी, माहुरी आदि जातियाँ भी हैं, जो नाना प्रकार का वाणिज्य–व्यापार करती हैं। मिथिला में कायस्थों का स्थान उच्च जातियों में है। ये सब विशेषकर बुद्धिजीवी है। मिथिला में कायस्थों की एक विशेष श्रेणी निवास करती है, जिसको 'मैथिल कायस्थ' कहा जाता है।[5]

मिथिला में ग्वाला अथवा अहीर जाति वालों की संख्या ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों से अधिक है। पूर्व में इस जाति की गणना शूद्रों में की जाती थी। पर उस समाज में इन सबों का स्थान ऊँचा था। कुर्मियों की भाँति इन सबों का छुआ जल ब्राह्मण ग्रहण करते थे। सम्प्रति इन लोगों को 'यादव' कहा जाता है। यदु क्षत्रिय थे, जिनके वंश मे कृष्ण उत्पन्न हुए थे। यादव यदुवंशी का पर्यायवाची शब्द है। इस जाति वालों के पास कृषि के लिए भूमि भी है, पर मुख्यतः ये लोग पशु–पालन कर दूध उत्पन्न करते थे, जिसके द्वारा इनका भरण–पोषण होता था। वर्तमान युग में यह जाति–उन्नति के पथ पर आशातीत रूप में अग्रसर हो रही है। जनसंख्या इन

सबों की अधिक थी ही। विद्वानों की संख्या भी अब शनैः– शनैः– इस जाति में बढ़ रही है। साथ ही श्री एवं सभ्यता भी सस्नेह इन सबों का गले लगा रही है।[6]

शूद्रों में अनेक जातियाँ हैं और उनके व्यवसाय भी अनेक हैं। उनमें कुछ ऐसे है जिनका छूआ जल द्विजाति वर्ग के हिन्दू ग्रहण करते हैं, और कुछ का नहीं। ऐसे शूद्र जिनका पानी चलता है, के दो विभाग हैं–प्रथम कारीगरों का तथा दूसरा कृषकों तथा अन्य कार्य करने वालों का। प्रथम विभाग हलवाइ, बरई, भड़भूँजा, काँदू, माली आदि का है। हलवाई मिठाइयाँ बनाते हैं। बरई पान उपजाते तथा उसे बनाकर बेचते भी हैं। भड़भूँजा अन्न को भून कर उससे भूँजा प्रस्तुत करते हैं। माली फूलों की माला बनाते हैं। इस प्रकार की अन्य जातियाँ वंश–परम्परागत अपना–अपना व्यवसाय करती हैं। दूसरे विभाग में कोइरी, कुर्मी, धानुक, अमात, केवट आदि के नाम आते हैं। कोइरी एवं कुर्मी अब अपने को शूद्र नहीं मानते हैं। वे सब अपने को क्षात्र घोषित करते हैं। कोइरी विशेषतया कृषक है। इस जाति के लोग कृषि–कार्य बड़ी तत्परता से करते हैं। अपनी श्रमशीलता के कारण इनमें अधिकांश समृद्ध हैं। भूमिहीन भी इनमें अनेक हैं, जो दूसरों से भूमि लेकर उसमें कृषि करते हैं। धानुक जाति के लोग विशेषकर नौकरी करते हैं। करनल वड्डेल्ल के मतानुसार उन सबों को 'धानुक' नाम धनुषधारी होने के कारण पड़ा। प्राचीन काल में उनके पूर्वज धनुष–बाणों के साथ सदा सतर्क रह कर अपनी तथा अपने प्रभुओं की रक्षा शत्रुओं से किया करते थे।[7]

कहार जाति के लोग शिविका ढ़ोने का काम करते हैं। इस कारण उनकी गणना अधिक पिछड़ी जातियों में है। कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाने का व्यवसाय करते हैं। इस जाति के कुशल कारीगर मृत्तिका की सुन्दर–सुन्दर देव–मूर्त्तियाँ तथा खिलोने भी तैयार करते हैं। लोहार लोहा से कृषि–कार्य के लिए उपकरण प्रस्तुत करते हैं। घरेलू काम की वस्तुएँ चाकू, छूरी, तरकारी काटने के हेतु हँसुआ या फँसुल आदि तैयार कर वे गाँव की आवश्यकता को पूरा करते हैं। उसके बदले में ग्रामवासी अपनी फसल में से निर्धारित भाग प्रति वर्ष उनको देते हैं। हजामों का काम गाँव के लोगो की दाढ़ी बनाना, केश काटना तथा यज्ञ एवं धार्मिक संस्कारों के अवसर पर यज्ञ करने वालों के सगे–सम्बन्धियों एवं मित्रों के पास निमंत्रण पहुँचाना होता है। पलटे में उनको भी गाँववाले अपनी फसल का एक हिस्सा सालाना देते हैं जिनको 'पाल' कहा जाता है। बरही काष्ठ का काम करते हैं। मल्लाह मछलियों को पकड़ने तथा नदी में नाव चलाने का व्यवसाय करते हैं। धीवर और तीवर मल्लाहों की कोटि की जातियाँ है, और उनका व्यवसाय भी वही है। नोनियाँ पहले मिट्टी से नमक निकालने का काम करते थे। अब विशेषकर वे लोग मिट्टी काटने, सड़कों का निर्माण करने तथा कृषि–मजदूर का कार्य करते हैं। इनका पानी कहीं चलता है और कहीं पर नहीं।[8] तेली तेलहन को कोल्हू में पेर कर उससे तेल निकालते हैं। उनका पेरा तेल का व्यवहार खाने और लगाने में सभी करते हैं, पर उनका छूआ जल सवर्ण हिन्दू नहीं पीते है। यात्रा के काल में उन पर दृष्टि पड़ जाने से अपशकुन माना जाता है। जो ब्राह्मण उन सबों की पुरोहिती करते हैं, वे भ्रष्ट माने जाते हैं। बेलदार नोनियाँ का काम करते हैं। ईंटों को चूर्ण कर उससे

वे सुरखी तैयार करते हैं, जो भवन–निर्माण–कार्य में चूने के साथ मिलाकर मसाले के रूप में व्यवहृत होती है। ताँती को ततमा भी कहते हैं। वे लोग हथ–करघा पर कपड़े बुनते हैं। इस जाति के अनेक राज–मिस्त्री का काम करते हैं। कलवार को मदिरा तैयार करने वाली जाति बताया जाता है। ये लोग उसकी दुकान भी करते हैं। इस जाति के लोगों ने अन्य व्यापार तथा व्यवसाय को भी अपनाया है। पढ़े–लिखे व्यक्ति बुद्धिजीवी होते जा रहे हैं। पासी ताड़ एवं खजूर के वृक्षों से नीरा निकालते हैं। नीरा को ताड़ी बनाकर बहुधा मद्यपान करने वाले व्यक्ति मादक द्रव्य के रूप में व्यवहार करते हैं। नीरा से गुड़ भी तैयार किया जाता है। धोबी कपड़े धोते हैं। मुसहरों की दशा बहुत गिरी हुई है। ये लोग भूमिहीन कृषि–मजदूर हैं तथा शिविका, खटोली, पालकी आदि भी अपने कंधे पर ढ़ोते हैं। ये लोग ईंट बनाते तथा उसके पैजावे को फूकते (जलाते) भी हैं। वे सब डोम, दुसाध, चमार, मेहतर तथा धोबी का छूआ भोजन नहीं करते हैं। दुसाधों की संख्या मिथिला में ग्वालों के बाद है। इस जाति के लोगों के पास भूमि नहीं है। यह बहादुर एवं परिश्रमी जाति हैं, पर आर्थिक स्थिति इन सबों की बुरी है। गाँवों में चौकीदारो ंका काम विशेषकर दुसाध जाति के लोगों को ही सौंपा जाता है। ये चौकीदार गाँव में घटी घटनाओं की सूचना थाने के आरक्षी–अधिकारी को आवश्यकतानुसार समय–समय पर देते रहते हैं और रात में पहरा भी देते हैं। समाचार–वाहक अथवा हरकारे का काम भी ये लोग करते हैं। घोड़ों के साइस एवं हाथियों के महावत का काम करने वाले विशेषतया दुसाध जाति वाले ही होते हैं। लकड़ी काटकर उसे फाड़ने, मिट्टी काटने, सड़क बनाने, तथा खेतों में मजदूरी करने का काम भी वे सब करते हैं। इन सबों का पानी नहीं चलता है, पर वे अछूत नहीं माने जाते हैं।[9]

निश्कर्श :

संस्कृति एवं द र्ान के क्षेत्र में मिथिला एक वि िाष्ट भू–भाग के रूप में अर्चित–चर्चित है। उल्लेखनीय है कि महाराज जनक के समय में मिथिला के योगीन्द्र महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा उनकी पत्नी मैत्रेयी को दिया गया उपदे ा 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो ....., जो मंत्र अध्यात्म विद्या की जड़ है एवं समस्त वेदान्त द र्ान का मूल आधार है से स्पष्ट होता है कि भारतवर्ष में अध्यात्म विद्या एवं द र्ान की उत्पत्ति स्थल मिथिला है।

संदर्भ :

1. दिवाकर, आर.आर. (सं.): बिहार थ्रु दएजेज
2. श्रीश, डॉ. दुर्गानाथ झा, मैथिली साहित्यक इतिहास, दरभंगा
3. चटर्जी, एस. के. तथा मिश्र, श्रीकान्तः वर्ण रत्नाकर (ज्योतिश्वर)
4. झा. म. म. उमेश : विद्यापति ठाकुर

5. सिंह, श्याम नारायण : हिस्ट्री ऑफ तिरहुत
6. मुखर्जी, आर के : हिन्दू सिविलाइजेशन
7. शर्मा, डा. राम प्रकाश, 1979, मिथिला का इतिहास, कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा
8. झा. श्री लक्ष्मीनाथ, 1962, मिथिला की सांस्कृतिक लोक चित्रकला, लक्ष्मीनाथ झा, ग्राम–सरिसबपाही
9. चौधरी, प्राचार्य राधाकृष्ण : मिथिला इन दि एज ऑफ विद्यापति, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी